

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 15: योगसिद्धियों का वर्णन

5 October 2026



भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव के प्रश्न पर अठारह सिद्धियों का वर्णन करते हैं — वे सिद्धियाँ जो भगवान् में मन लगाने वाले योगी की सेवा में उपस्थित होती हैं — और फिर उसी श्वास में प्रकट करते हैं कि जो आत्मा केवल उन्हीं को चाहती है, उसके लिए ये समस्त चमत्कार केवल मार्ग में विलम्ब मात्र हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। भगवान् के अन्तर्मुखी ध्यान-उपदेश से प्रभावित होकर, उद्धव अब यह जानना चाहते हैं कि जो योगी उस गहन तल्लीनता को प्राप्त करता है, उसे कौन-से चमत्कार प्राप्त होते हैं। भगवान् अत्यन्त वात्सल्य से उत्तर देते हैं, अठारह सिद्धियों को एक-एक करके नाम देते हुए, और यह दिखाते हुए कि अपने ही किसी-न-किसी रूप पर मन स्थिर करके प्रत्येक सिद्धि कैसे प्राप्त होती है — और फिर, जैसे पिता भटके हुए बालक को कोमलता से घर बुलाता है, उद्धव को बताते हैं कि जिस आत्मा की एकमात्र कामना स्वयं भगवान् हैं, उसके लिए ये ही शक्तियाँ बाधा बन जाती हैं।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 15 (पञ्चदश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा योगसिद्धियों का वर्णन
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका, भगवान् के उद्धव के साथ निरन्तर संवाद में
- केन्द्रीय विषय: योग की अठारह सिद्धियाँ, प्रत्येक को प्राप्त करने वाला ध्यान, तथा भगवान् की यह शिक्षा कि भक्त के लिए ये ही सिद्धियाँ बाधा हैं, लक्ष्य नहीं
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 1-36
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 14 में, भगवान् ने उद्धव को योग का अष्टांग मार्ग सिखाया, जिसके द्वारा साधक हृदय के भीतर उनके ही सुन्दर रूप का ध्यान करता है, और क्रमशः मन को समेटता हुआ अन्ततः उनमें वैसे ही विश्राम करता है जैसे अग्नि में ज्वाला विश्राम करती है। उसी गहन तल्लीनता से अब उद्धव बोलते हैं।

उद्धव सिद्धियों के विषय में पूछते हैं

भगवान् ने इस उपदेश का आरम्भ लगभग एक वचन के रूप में किया: सिद्धियाँ स्वयं उस स्थिर-चित्त योगी की सेवा में आती हैं जिसने इन्द्रियों तथा श्वास को वश में कर अपना मन उन पर स्थिर कर लिया है।

श्रीभगवानुवाच

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।

मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

śrī-bhagavān uvāca jīteन्द्रियasya yuktasya jīta-śvāsasya yoginaḥ mayi dhārayataś ceta upatiṣṭhanti siddhayaḥ

अर्थ: भगवान् ने आरम्भ किया: जिस योगी ने इन्द्रियों को जीता है, श्वास को वश में किया है, तथा स्थिर मन से मुझ पर ध्यान धारण करता है, उसकी सेवा में नाना प्रकार की सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 1)

यह सुनकर उद्धव ने आगे पूछा: किस धारणा से कौन-सी सिद्धि, किस प्रकार प्राप्त होती है; तथा सिद्धियाँ कुल कितनी हैं, क्योंकि भगवान् ही योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाले हैं?

अठारह सिद्धियों के नाम

भगवान् ने उत्तर दिया कि योग के पारगामी मुनियों द्वारा अठारह सिद्धियाँ, उनकी धारणाओं सहित, बताई गई हैं। इनमें आठ मुख्यतः उन्हीं में हैं; शेष दस सत्त्वगुण के प्रकटीकरण से प्राप्त होती हैं।

श्रीभगवानुवाच

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ।

तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

śrī-bhagavān uvāca siddhayo 'ṣṭādaśa proktā dhāraṇā yoga-pāra-gaiḥ tāsām aṣṭau mat-pradhānā daśaiva guṇa-hetavaḥ

अर्थ: भगवान् ने उत्तर दिया: योग के पारगामी मुनियों ने अठारह सिद्धियाँ, उनकी धारणाओं सहित, बताई हैं। इनमें से आठ मुख्यतः मुझमें हैं; शेष दस सत्त्वगुण से उत्पन्न होती हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 3)

जो आठ स्वभावतः उन्हीं की हैं, भगवान् ने उन्हें तुरन्त नाम दिया: अणिमा, अणु के समान सूक्ष्म होना; महिमा, विशाल होना; लघिमा, अत्यन्त हल्कापन; प्राप्ति, समस्त सृष्टि की इन्द्रियों तक निर्बाध पहुँच; प्राकाम्य, इच्छानुसार भोग की शक्ति; ईशित्व, माया पर प्रभुत्व; वशिता, इन्द्रिय-सुख के प्रति अनासक्ति; और कामावसायिता, प्रत्येक इच्छा की पूर्ण तृप्ति।

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।

प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।

एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥

aṇimā mahimā mūrter laghimā prāptir indriyaiḥ prākāmyaṁ śruta-dṛṣṭeṣu śakti-preraṇam īśitā guṇeṣv asaṅgo vaśitā yat-kāmas tad avasyati etā me siddhayaḥ saumya aṣṭāv autpattikā matāḥ

अर्थ: अणिमा, महिमा तथा लघिमा शरीर से सम्बन्धित हैं; प्राप्ति समस्त सृष्टि की इन्द्रियों से सम्पर्क है; प्राकाम्य सुने या देखे गए भोगों को भोगने की शक्ति है; ईशिता माया तथा उसकी शक्तियों को संचालित करने की शक्ति है; वशिता इन्द्रिय-विषयों के प्रति अनासक्ति है; और जो कुछ चाहा जाए वही प्राप्त हो — यही कामावसायिता है। हे सौम्य, ये आठ सिद्धियाँ मुझमें स्वाभाविक मानी गई हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 4-5)

सत्त्वगुण से दस और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं: इसी शरीर में भूख, प्यास तथा वृद्धावस्था से मुक्ति; किसी भी दूरी से देखना तथा सुनना; मन के समान वेगवान गति; इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करना; दूसरे के शरीर में प्रवेश करना; इच्छानुसार शरीर त्यागना; देवताओं के साथ क्रीड़ा का सौभाग्य; किसी भी संकल्प की सिद्धि; तथा सर्वत्र अबाधित आज्ञा। भगवान् ने एक और लघु समूह भी बताया: भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान; शीत-उष्ण, सुख-दुःख जैसे द्वन्द्वों में समभाव; दूसरों के मन को जानना; अग्नि, सूर्य, जल तथा विष को निष्प्रभावी करने की शक्ति; और किसी से भी पराजित न होना (श्लोक 6-8)।



भगवान् अठारह सिद्धियों को एक-एक कर नाम देते हैं — आठ जो उन्हीं के स्वभाव की हैं, दस सत्त्वगुण से उत्पन्न, तथा एक लघु समूह (श्लोक 3-8)।

प्रत्येक सिद्धि कैसे प्राप्त होती है

भगवान् ने तब प्रकट किया कि प्रत्येक सिद्धि, उस शक्ति पर नहीं अपितु स्वयं उन्हीं के किसी रूप पर मन स्थिर करने का फल है। सूक्ष्म भूतों पर ध्यान से अणिमा; महत्तत्त्व, जो ब्रह्माण्डीय बुद्धि है, पर ध्यान से महिमा; परमाणुओं पर ध्यान से लघिमा; सत्त्व से उत्पन्न अहंकार-तत्त्व पर ध्यान से प्राप्ति, अर्थात् समस्त इन्द्रियों पर प्रभुत्व; अव्यक्त से उत्पन्न सूत्र-तत्त्व पर ध्यान से प्राकाम्य, भोग की चरम शक्ति; और सर्वव्यापी साक्षी तथा माया के नियन्ता रूप में ध्यान से ईशित्व, प्रत्येक देहधारी आत्मा पर प्रभुत्व प्राप्त होता है (श्लोक 9-15)।

इन समस्त अन्तर्दृष्टियों में एक विशेष कोमलता से चमकती है: जो योगी अपना मन भगवान् पर नारायण रूप में — चतुर्थ अर्थात् परात्पर तत्त्व, जिसे भगवान् कहा जाता है — स्थिर करता है, वह उन्हीं के गुणों को धारण कर वशिता को प्राप्त करता है।

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।

मनो मय्यादधद् योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥

nārāyaṇe turīyākhye bhagavac-chabda-śabdite mano mayy ādadhad yogī mad-dharmā vaśitām iyāt

अर्थ: जो योगी अपना मन मुझ पर नारायण रूप में, जो चतुर्थ अथवा परात्पर तत्त्व कहा जाता है तथा भगवान् नाम से जाना जाता है, स्थिर करता है, वह मेरे ही गुणों को प्राप्त कर वशिता को प्राप्त करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 16)

निर्गुण ब्रह्म रूप में भगवान् पर ध्यान करने से परम आनन्द प्राप्त होता है, जो कामावसायिता का सार है; भगवान् अनिरुद्ध, श्वेतद्वीप के शुद्ध स्वामी के रूप में ध्यान करने से शुद्धता तथा भूख, शोक एवं मृत्यु की छह ऊर्मियों से मुक्ति प्राप्त होती है (श्लोक 17-18)। एक अत्यन्त सुन्दर दृष्टि अपने ही श्लोक की पात्र है: भगवान् में अव्यक्त दिव्य नाद का चिन्तन करने से योगी, हंस के समान सूक्ष्मतम ध्वनि पर ध्यान देते हुए, सामान्य श्रवण-सीमा से परे प्राणियों की वाणी सुनने में समर्थ हो जाता है।

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्रहन् ।

तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥

mayy ākāśātmani prāṇe manasā ghoṣam udvahan tatropalabdhā bhūtānāṃ haṁso vācaḥ śṛṇoty asau

अर्थ: मुझमें, आकाशस्वरूप प्राण में, अव्यक्त नाद का मन से चिन्तन करते हुए, योगी — हंस के समान शुद्ध को पहचानते हुए — उसमें प्रकट होने वाली प्राणियों की वाणी सुनने में समर्थ हो जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 19)

सूर्य से नेत्र को जोड़ने से दूरदृष्टि प्राप्त होती है, सम्पूर्ण विश्व दृष्टिगोचर होता है; मन, शरीर तथा प्राण को भगवान् से जोड़ने से मनोजव प्राप्त होता है, जिससे शरीर वहीं पाया जाता है जहाँ मन गया हो; और उन्हीं पर एकाग्रता के बल से योगी अपने मन द्वारा कल्पित कोई भी रूप धारण कर सकता है — यह एकाग्रता ही, वे कहते हैं, समस्त सिद्धियों का आधार है (श्लोक 20–22)।



जो योगी अपना मन भगवान् पर नारायण रूप में, चतुर्थ तथा परात्पर तत्त्व के रूप में स्थिर करता है, वह उन्हीं के गुणों को धारण कर वशिता प्राप्त करता है (श्लोक 16)।

दूसरे के शरीर में प्रवेश, तथा इच्छानुसार शरीर त्याग

दो और सिद्धियाँ स्वयं शरीर पर प्रभुत्व से सम्बन्धित हैं। जो योगी किसी अन्य, निर्जीव शरीर में प्रवेश करना चाहता है, वह अपने आप को वहाँ पहले से उपस्थित मानकर चिन्तन करता है; तब उसका प्राण अपने शरीर को छोड़कर उस दूसरे शरीर में वैसे ही प्रवेश करता है जैसे काली मधुमक्खी एक फूल से दूसरे फूल में जाती है। तथा जो योगी हृदय, वक्षस्थल, कण्ठ तथा मस्तक से होते हुए क्रमशः प्राण को ऊपर उठाता है, वह अपनी इच्छा के समय शरीर त्याग सकता है (श्लोक 23–24)। यहाँ भी भगवान् का बल वही है: यह शक्ति उन्हीं पर दृढ़ एकाग्रता से प्राप्त होती है, श्वास तथा मन की सूक्ष्मतम क्रियाओं तक ले जाई हुई — बल से नहीं, अपितु शान्त, अभ्यस्त तल्लीनता से।

देवताओं के साथ क्रीड़ा, तथा भाक्ते के फल

भगवान् तब कोमल वरदानों की ओर मुड़े। जो स्वर्ग के क्रीड़ा-स्थल में विहार करना चाहता है, उसे उस सत्त्व का चिन्तन करना चाहिए जो उन्हीं के स्वरूप में है; और उसी सत्त्व की किरणों, अप्सराएँ, विमान लेकर उसे ग्रहण करने आती हैं।

विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ।

विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥

vihaṛiṣyan surākriḍe mat-sthaṁ sattvaṁ vibhāvayet vimānenopatiṣṭhanti sattva-vṛttīḥ sura-striyaḥ

अर्थ: जो देवताओं के क्रीड़ा-स्थल में विहार करना चाहता है, वह मुझमें स्थित सत्त्व का चिन्तन करे; तब उसी सत्त्व की किरण-स्वरूपा अप्सराएँ विमान लेकर उसे ग्रहण करने आती हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 25)

भगवान् पर मन स्थिर कर जो भक्त आत्मा बुद्धि से जिस वस्तु का संकल्प करती है, वह अवश्य प्राप्त होती है; और भगवान् का स्वभाव धारण करने वाले की आज्ञा भी कहीं बाधित नहीं होती (श्लोक 26-27)। भक्ति से शुद्ध हुए तथा भगवान् में स्थिर एकाग्रता रखने वाले योगी को भूत, वर्तमान तथा भविष्य का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है; ऐसे योग से परिष्कृत शरीर को अग्नि उतना ही कम हानि पहुँचा सकती है जितनी जल जलचरों को; और भगवान् के ही दिव्य रूपों का चिन्तन करने वाला अजेय हो जाता है (श्लोक 28-30)।



जो स्वर्ग के क्रीड़ा-स्थल में विहार करना चाहता है, वह भगवान् में स्थित सत्त्व का चिन्तन करता है, और अप्सराएँ विमान लेकर उसे ग्रहण करने आती हैं (श्लोक 25)।

समस्त सिद्धियाँ भक्त की सेवा में — फिर भी ज्ञानीजन इन्हें बाधा कहते हैं

सिद्धियों को एक-एक करके प्रकट करने के बाद, भगवान् ने अपने उपदेश को उसके हृदय तक पहुँचाया। ये सब की सब, बिना किसी अपवाद के, उसी साधक की सेवा में उपस्थित रहती हैं जो इस प्रकार की एकाग्रता से उनकी उपासना करता है; वास्तव में, जिसने इन्द्रिय, मन, श्वास तथा शरीर को इस प्रकार वश में कर लिया हो, उसके लिए कौन-सी सिद्धि दुर्लभ रह जाती है (श्लोक 31-32)? और तब, उस कोमलता के साथ जो सम्पूर्ण अध्याय को नया रूप देती है, वे चमत्कारों की इस सूची को उलट देते हैं।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।

मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥

antarāyān vadanty etā yuñjato yogam uttamam mayā sampadyamānasya kāla-kṣapaṇa-hetavaḥ

अर्थ: जो परम योग का अभ्यास करते हुए मुझसे मिलन चाहता है, उसके लिए ज्ञानीजन इन्हीं सिद्धियों को बाधा कहते हैं, क्योंकि ये केवल उस लक्ष्य तक पहुँचने में विलम्ब का कारण बनती हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 33)

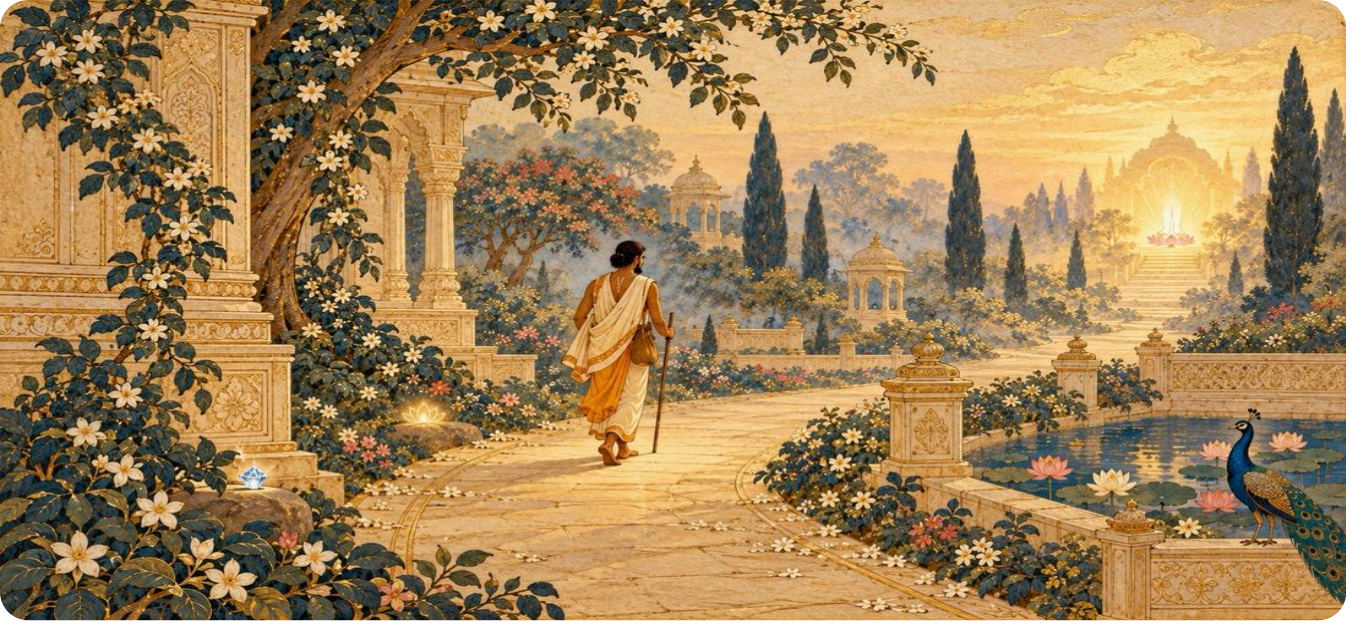
भगवान् यह नहीं कहते कि सिद्धियाँ मिथ्या हैं; वे केवल यह कहते हैं कि जिसका वास्तविक लक्ष्य केवल वे ही हैं, उसके लिए ये चमत्कार ठहरने का स्थान हैं, गन्तव्य नहीं। और वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि इनकी सामर्थ्य में क्या है और क्या नहीं।

जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ।

योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

janmauṣadhi-tapo-mantrair yāvatīr iha siddhayaḥ yogenāpnoti tāḥ sarvā nānyair yoga-gatiṁ vrajet

अर्थ: जन्म, औषधि, तप अथवा मन्त्र से यहाँ जितनी भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब योगी योग से भी प्राप्त कर लेता है; किन्तु योग का परम लक्ष्य अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होता। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 34)



ज्ञानीजन इन्हीं सिद्धियों को परम योग के साधक के लिए बाधा कहते हैं, क्योंकि ये केवल उस एकमात्र वास्तविक प्राप्ति — भगवान् से मिलन — को विलम्बित करती हैं
(श्लोक 33)।

इस सम्पूर्ण सूची से भक्त जो एक ही शिक्षा साथ ले जाता है, वह यही है। भगवान् अठारह सिद्धियों को इतने पूर्ण रूप से नाम देते हैं, और उनकी धारणाओं को इतने प्रेमपूर्वक समझाते हैं, उद्धव को शक्ति की ओर लुभाने के लिए नहीं, अपितु यह दिखाने के लिए कि ये असाधारण वरदान भी उन्हीं पर स्थिर मन का उफान मात्र हैं। जन्म, औषधि, तप तथा मन्त्र प्रत्येक कोई-न-कोई सिद्धि दे सकते हैं, किन्तु केवल योग ही आत्मा को उस वास्तविक पुरस्कार तक पहुँचाता है — उन्हीं में स्थापित जीवन। जिसने यह झलक पा ली है, उसके मार्ग में प्रकट होने वाली प्रत्येक सिद्धि को वह बस धीरे से एक ओर रख देता है, उसी स्थिर हाथ से जिससे भटकते मन को समेटा जाता है, ताकि दृष्टि भगवान् के चरणों से कभी न हटे।

भगवान् — समस्त के स्रोत तथा अन्तर्यामी आत्मा

भगवान् ने इस उपदेश का समापन यह घोषित करते हुए किया कि वे ही इस सबके मूल में हैं — समस्त सिद्धियों के, तथा योग, सांख्य, धर्म एवं वेद के आचार्यों तक के स्रोत तथा नियन्ता (श्लोक 35)। और उन्होंने इस सबसे गहन वचन से समापन किया — वे किसी दूरस्थ दाता नहीं, अपितु प्रत्येक प्राणी के भीतर बसी हुई साक्षात् आत्मा तथा उनकी बाह्य परिधि भी हैं, फिर भी स्वयं किसी से आबद्ध नहीं हैं।

अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ।

यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

aham ātmāntaro bāhyo 'nāvṛtaḥ sarva-dehinām yathā bhūtāni bhūteṣu bahir antaḥ svayaṁ tathā

अर्थ: मैं समस्त देहधारियों की अन्तरतम आत्मा हूँ, तथा उनकी बाह्य परिधि भी, फिर भी स्वयं किसी से आवृत नहीं हूँ — जैसे पंचमहाभूत प्राणियों के शरीरों में व्याप्त भी रहते हैं और उन्हें घेरे भी रहते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 15, श्लोक 36)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रत्येक सिद्धि भगवान् पर स्थिर मन की सेवा में रहती है। दिव्य सिद्धि कभी भी केवल महत्वाकांक्षा का फल नहीं होती; यह उस योगी को प्राप्त होती है जिसने इन्द्रियों तथा श्वास को जीतकर मन को स्थिरता से उन्हीं पर रखा हो (श्लोक 1)।
2. अठारह सिद्धियों के दो स्रोत हैं। आठ मुख्यतः भगवान् के ही स्वभाव की हैं — अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशिता तथा कामावसायिता — जबकि शेष दस, तथा एक लघु समूह, सत्त्वगुण से उत्पन्न होती हैं (श्लोक 3-8)।
3. प्रत्येक सिद्धि एक विशेष ध्यान का फल है। भगवान् पर सूक्ष्म भूतों, नारायण अथवा दिव्य प्राण के रूप में मन स्थिर करने से योगी को उसी के अनुरूप शक्ति प्राप्त होती है, क्योंकि वह शक्ति आरम्भ से ही उन्हीं से भिन्न नहीं थी (श्लोक 9-24)।
4. भक्ति इन वरदानों में से कोमलतम तथा गम्भीरतम, दोनों को खोलती है। देवताओं के साथ विहार, तीनों कालों का ज्ञान, अग्नि से अभय, अजेयता — ये सब भक्ति से शुद्ध तथा भगवान् में स्थिर हृदय से स्वतः उत्पन्न होते हैं (श्लोक 25-30)।
5. भक्त के लिए सिद्धियाँ लक्ष्य नहीं, बाधा हैं। यही इस अध्याय की केन्द्रीय शिक्षा है। भगवान् स्वयं इन शक्तियों को बाधा कहते हैं — कालक्षपणहेतवः, अर्थात् “विलम्ब के कारण” — उस साधक के लिए जो परम योग का अभ्यास कर रहा है, क्योंकि किसी भी सिद्धि में रुकना उस एकमात्र वास्तविक प्राप्ति, अर्थात् भगवान् से मिलन को विलम्बित कर देता है। जन्म, औषधि, तप अथवा मन्त्र से जो भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है, वह योग से भी प्राप्त होती है; किन्तु परम पुरस्कार, उन्हीं की उपस्थिति में शाश्वत जीवन, केवल उन्हीं पर प्रेमपूर्ण एकाग्रता से प्राप्त होता है (श्लोक 31-34)। सच्चा वैष्णव कभी सिद्धि को स्वयं के लिए नहीं चाहता; यदि कोई अनचाही आ जाए, तो उसे वैसे ही ग्रहण किया जाता है जैसे घर की ओर दृढ़ता से बढ़ते हुए राह में पड़ा कोई फूल ग्रहण किया जाता है।
6. भगवान् ही समस्त के एकमात्र स्रोत तथा अन्तर्यामी आत्मा हैं। वे ही समस्त सिद्धियों के, योग, सांख्य, धर्म तथा वेद के ज्ञाताओं के मूल हैं; और वे प्रत्येक प्राणी के भीतर उनकी अन्तरतम आत्मा के रूप में निवास करते हैं, साथ ही उन्हें बाहर से घेरे भी रहते हैं, स्वयं किसी भी परिधि से अछूते (श्लोक 35-36)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

अठारह चमत्कारों की यह सूची पढ़ने के बाद हृदय में जो बात शेष रह जाती है, वह कोई एक शक्ति नहीं, अपितु भगवान् के बोलने का ढंग है। वे सिद्धियों को किसी निषिद्ध फल की भाँति रोककर नहीं रखते, न ही उन्हें पुरस्कार की भाँति लटकाते हैं; वे बस उद्भव को दिखाते हैं कि प्रत्येक सिद्धि कैसे प्राप्त होती है, क्योंकि वे सब, अपने मूल में, केवल वे ही हैं, मन के किसी-न-किसी कोण से देखे गए। फिर वे इस सबके नीचे से धीरे से आधार हटा देते हैं, यह कहते हुए कि यह सब कुछ मुख्य बात नहीं है। इसमें कुछ अत्यन्त आश्चर्यकारी है: भगवान् अपने भक्त की परीक्षा किसी पीछा करने योग्य शक्ति-सूची से नहीं ले रहे; वे यह सिखा रहे हैं कि जो निकटता किसी सिद्धि को जन्म देती है, वही यदि प्रेम में थोड़ी और आगे बढ़े, तो आत्मा को प्रत्येक चमत्कार से आगे, उन्हीं की उपस्थिति में ले जाती है। इस अध्याय को पढ़ने वाले भक्त में अणिमा या ईशित्व की महत्वाकांक्षा जागृत होने की आवश्यकता नहीं; इसके स्थान पर यही शान्त बोध जागना चाहिए कि भगवान् में इतना तल्लीन मन, जब पूर्णतः समर्पण में अर्पित हो, तो वह साक्षात् भगवान् तक पहुँच सकता है।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज, छोटे उपहार को बड़े उपहार के लिए एक ओर रखने का अभ्यास कीजिए। जब भी कोई सुखद वस्तु अनायास आपके पास आए — एक प्रशंसा, कोई छोटी सफलता, कोई अप्रत्याशित सुविधा — एक क्षण रुकिए और उसे शान्तिपूर्वक भगवान् को अर्पित कर दीजिए, उसी में रमने के बजाय, जैसे यह अध्याय सिखाता है कि वास्तविक सिद्धि को भी ग्रहण कर छोड़ देना चाहिए। फिर मन को पुनः उनकी ओर मोड़िए, उनके पवित्र नाम का जप करते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस छोटे, बार-बार दोहराए जाने वाले चुनाव में — उपहार को देखना, किन्तु दाता की ओर चलते रहना — इस अध्याय की वह शिक्षा निहित है जो यह प्रत्येक सच्चे साधक से माँगता है।

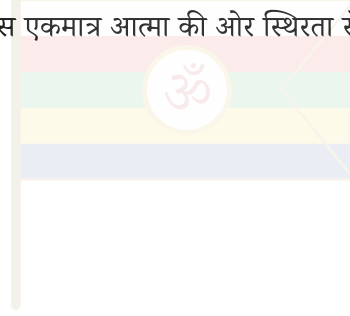
उपसंहार

एकादश स्कन्ध का पञ्चदश प्रवचन उद्धव के सिद्धियों सम्बन्धी प्रश्न को सम्पूर्ण भागवत की सबसे ज्योतिर्मय शिक्षाओं में से एक तक ले जाता है। भगवान् अठारह दिव्य सिद्धियों के नाम बताते हैं, प्रत्येक को खोलने वाला ध्यान समझाते हैं, और दिखाते हैं कि प्रत्येक शक्ति केवल उन्हीं पर सच्चे रूप से स्थिर मन का उफान है। फिर वे उद्धव को वह बताते हैं जो कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है: उन्हीं से मिलन चाहने वाली आत्मा के लिए, ये ही सिद्धियाँ बाधाएँ हैं, उस मार्ग में विलम्ब जिसका गन्तव्य स्वयं भगवान् हैं। जन्म, औषधि, तप या मन्त्र के द्वारा मिलने वाली कोई भी सिद्धि योग से भी सुलभ है, पर योग का परम लक्ष्य किसी दूसरे उपाय से कभी नहीं मिलता। और अन्त में वे यह प्रकट करते हैं कि वे कभी इससे पृथक् नहीं थे — समस्त सिद्धियों के स्रोत, तथा वह अन्तरतम आत्मा जो प्रत्येक प्राणी के भीतर रहते हुए उन्हें बाहर से भी घेरे रहती है। इस प्रकार यह अध्याय भक्त को चमत्कारों के पीछे भागने के लिए नहीं, अपितु उस एकमात्र आत्मा की ओर स्थिरता से चलते रहने के लिए छोड़ जाता है जो स्वयं ही खोजने योग्य एकमात्र चमत्कार हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, पञ्चदश प्रवचन, पृष्ठ 580–584।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-15-yoga-siddhi-varnan-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

